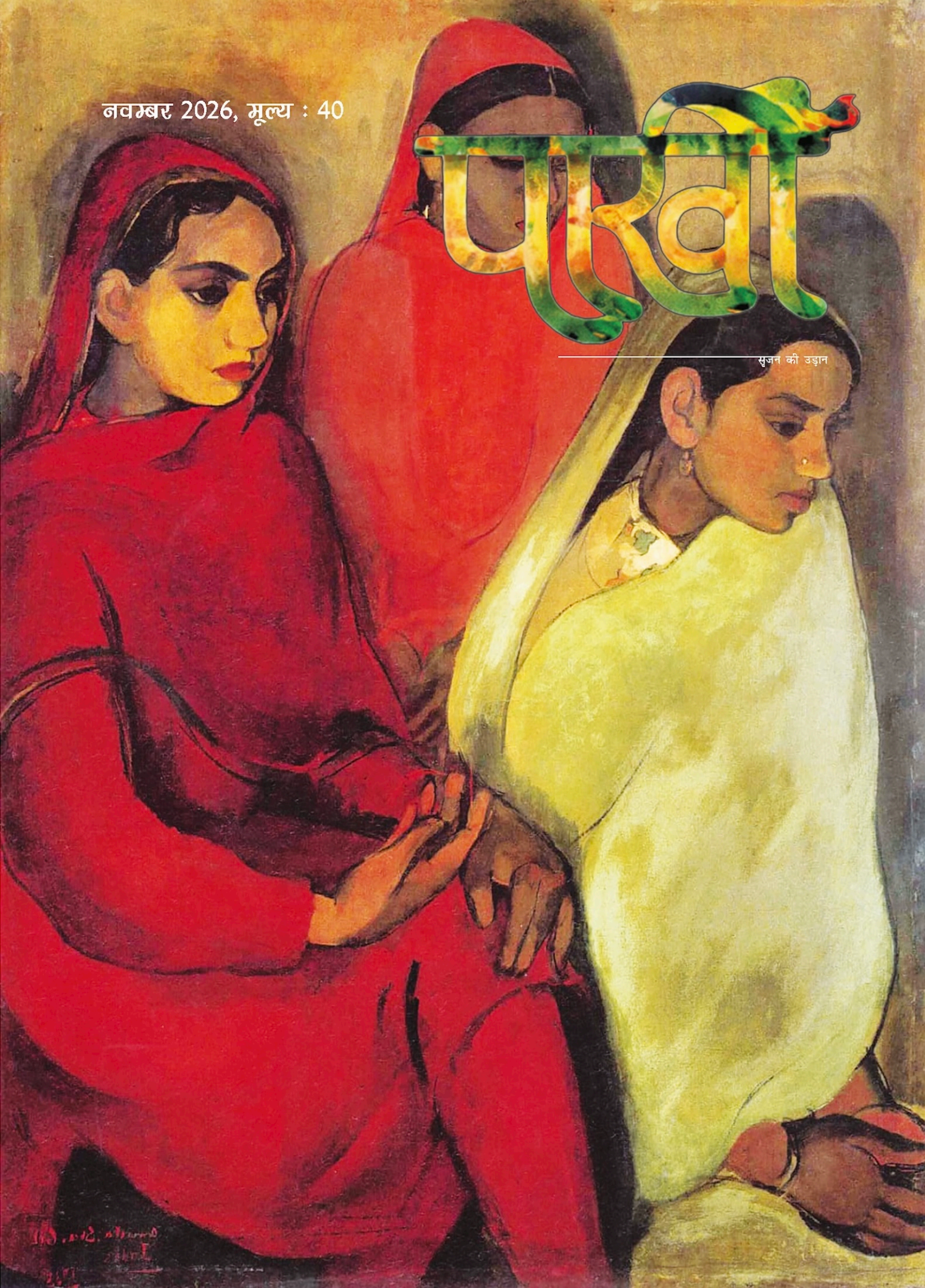
नवम्बर 2026, मूल्य : 40



पखेरू

सृजन की उड़ान

संपादक
अपूर्व

महाप्रबंधक
अमित कुमार

शब्द-संयोजन
उषा ठाकुर

रेखाचित्र : मार्टिन जॉन, शशिभूषण बडोनी, अजय कुमार सिन्हा



वर्ष : 19, अंक 2, नवंबर, 2026

मूल्य :

प्रति	:	रु. 40.00
वार्षिक, रजिस्टर्ड डाक सहित	:	रु. 1000.00
आजीवन, रजिस्टर्ड डाक सहित	:	रु. 10000.00

भुगतान इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसाइटी के नाम से किया जाए।
भुगतान ऑनलाइन या सीधे बैंक में भी जमा कर सकते हैं।
बैंक : UNION BANK
खाता संख्या : 520101255568785
IFSC : UBIN **0905011**
बैंक शाखा : जी-28, सेक्टर-18, नोएडा-201301
उत्तर प्रदेश

प्रकाशक

इंडिपेंडेंट मीडिया इनीशिएटिव सोसाइटी
बी-107, सेक्टर-63, नोएडा-201309
गौतमबुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश
दूरभाष : 0120-4330755
editor@pakhi.in
pakhimagazine@gmail.com
www.facebook.com/pakhimagazine
Web portal : www.pakhi.in

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अंतर्गत विचारणीय। स्वामित्व इंडिपेंडेंट मीडिया इनिशिएटिव सोसाइटी के लिए प्रकाशक, मुद्रक नारायण सिंह राणा द्वारा चार दिशाएं प्रिंटर्स प्रा.लि. जी-39, नोएडा से मुद्रित एवं बी-107, सेक्टर 63, नोएडा से प्रकाशित।



अमृता शेरगिल की 1935 में बनी प्रसिद्ध पेंटिंग 'थ्री गर्ल्स' भारतीय आधुनिक कला की ऐसी कृति है, जो अपने समय से आगे जाकर स्त्री के अंतर्मन, उसकी संवेदनाओं और सामाजिक स्थिति पर विचार करने का अवसर देती है। चित्र में साथ बैठी तीन युवतियों के चेहरों और भाव-भंगिमाओं में एक ऐसी खामोशी है, जिसके भीतर अनेक अनकहे प्रश्न छिपे प्रतीत होते हैं। यह केवल तीन स्त्रियों का चित्र नहीं, बल्कि उनके भीतर की दुनिया को देखने का एक कलात्मक आमंत्रण भी है। 'पाखी' के नवंबर अंक के लिए इस कृति का चयन अतीत को वर्तमान से जोड़ने का एक प्रयास है। तीन युवतियों का मौन हमें यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि क्या समाज स्त्री की आवाज को पर्याप्त जगह देता है, क्या उसकी स्वतंत्रता को सहज रूप से स्वीकार करता है और क्या उसकी सुरक्षा के साथ-साथ उसके सपनों और निर्णयों का सम्मान भी करता है। शायद इस चित्र की सबसे बड़ी शक्ति यही है कि यह प्रश्न उठाता है, लेकिन उनके उत्तर पाठक के विवेक पर छोड़ देता है।

अनुक्रमणिका

संपादकीय/अपूर्व

साहित्य का अगला संकट किताब नहीं, पाठक है 4

चिट्ठी आई है 8

कहानियां

कातिल भी वो, फरिश्ते भी वो	:	धनेश दत्त पांडेय	10
बीच का आदमी	:	राजेंद्र जोशी	17
त्यागपत्र-कहानी	:	सुजीत वर्मा	20
मैंने भी देखा है पॉल गोमरा का स्कूटर	:	पारस नाथ झा	24
जात प्रेमी	:	वर्षा भगवाने	28

कविताएं/गीत

मुकेश कुमार की कविताएं 32

यश मालवीय का गीत 34

संजय सिंह की कविताएं 35

शांभवी झा की कविता 37

मूल्यांकन

हिंदी की पहली दलित कहानी 'फसाद' : रत्नकुमार सांभरिया 38

संतोष दीक्षित को 2026 का कथाक्रम सम्मान *(खबरनामा)* 41

प्रयोगी शिल्प में प्रेम और जीवन के कथा-रंग : बी.एल. आच्छा 42

पीड़ा और प्रतिरोध की कविताएं : आलोक कुमार 45

स्याह जीवन से उजला निकालने का प्रयास : पूजा अग्निहोत्री 48

साक्षात्कार

उम्र की लंबी होती परछाईयों का क्या करूं? : मोहम्मद हारून रशीद 51

स्थाई स्तंभ

कल्पित कथन

शरद देवड़ा : एक पत्थर के लैंपपोस्ट की याद : कृष्ण कल्पित 58

सत्याग्रह

शास्त्रीयता की अवधारणा को चुनौती देते जेफरी आर्चर : प्रियदर्शन 61

पाखी संवाद–जहां शब्द डरते नहीं/प्रतिक्रियाएं

सत्य और अहिंसा का पुजारी 63
एक तारीख, दो लेखक और एक ही प्रश्न 67
एक तारीख, दो साहित्यिक संसार : आचार्य रामचंद्र शुक्ल और ऐन राइस 69
कविता से आगे, सवाल करने वाला साहित्यकार 71
एक तारीख, तीन साहित्यिक संसार : आर.के. नारायण, रामविलास शर्मा और के. शिवराम कारंत 73
आदमी को आदमी रहने दो 75
भूख और बेघर आदमी की आवाज 77
जिसने कविता को पन्ने पर भी जीवित कर दिया 79
जिसने दुनिया को हंसाया, लेकिन नोबेल नहीं मिला 81
तीन लेखक, तीन संसार–दूधनाथ सिंह, शिवानी और आर्थर मिलर 83
ग़ज़ल जब भूखे आदमी की आवाज बन गई 86
तख्त से तन्हाई तक का सफर 88
दो स्त्री स्वर, दो अलग संसार 91
पत्रकारिता जब जिंदगी से बड़ी हो गई 93
साहित्य को देखने की एक नई दृष्टि 94





साहित्य का अगला संकट किताब नहीं, पाठक है

अमूमन 'पाखी' का संपादकीय पत्रिका के प्रेस में जाने के समय ही लिखता हूं। इस बार लेकिन आज माने 30 सितंबर को ही लिखने बैठ गया। कारण आज के 'इंडियन एक्सप्रेस' में छपी एक खबर जिसने मुझे भीतर तक बेचैन कर दिया। पत्रकारिता से जुड़ा होने के नाते रोज न जाने कितनी खबरें पढ़ता हूं। बहुत-सी खबरें कुछ देर बाद स्मृति से उतर जाती हैं, लेकिन इस खबर ने मुझे रोक लिया। खबर के अनुसार दिल्ली स्थित 135 वर्ष पुरानी सेंट्रल सेक्रेटेरिएट लाइब्रेरी, जिसमें साढ़े आठ लाख से अधिक किताबें हैं, नए सेंट्रल विस्टा परिसर में अपने भविष्य को लेकर अनिश्चितता में है। देश की सत्ता के नए प्रशासनिक परिसर में इस विशाल पुस्तकालय के लिए पर्याप्त जगह अभी तक तय नहीं हो सकी है। संस्कृति मंत्रालय को मात्र दो कमरे दिए जाने का प्रस्ताव दिया गया था जिसे मंत्रालय ने स्वीकार नहीं किया क्योंकि इतनी जगह उसके विशाल संग्रह और आवश्यक सुविधाओं के लिए पर्याप्त नहीं थी। यह खबर पढ़ते हुए मेरे मन में सबसे पहला सवाल यही आया कि जिस देश में लाखों किताबों का ऐसा भंडार मौजूद है, वहां किताबों के लिए जगह क्यों नहीं बच रही है? जिस देश ने ज्ञान, विचार और साहित्य की अपनी लंबी परंपरा को किताबों में सहेजा है, उसी देश में एक ऐतिहासिक पुस्तकालय अपने घर की तलाश में क्यों है?

इस चिंता को और गहरा करने वाली बात एक अन्य पुस्तकालय के बावत इस खबर में थी। दिल्ली की तुलसी सदन लाइब्रेरी की दो लाख से अधिक किताबें, जिनमें हिंदी सहित चौदह भारतीय भाषाओं का साहित्य शामिल है, लगभग पंद्रह वर्षों से डिब्बों में बंद पड़ी हैं। दिल्ली मेट्रो के निर्माण के लिए 2011 में इस पुस्तकालय को बंद किया गया था और तब से किताबों का बड़ा हिस्सा पाठकों के पास वापस नहीं पहुंच सका। एक कमरे में रखे वे डिब्बे बंद किताबों के डिब्बे नहीं हैं। वे जैसे हमारे समय की एक तस्वीर थे—किताबें हैं, साहित्य है, भाषाएं हैं, ज्ञान है, लेकिन पाठक तक पहुंचने का रास्ता कहीं खो गया है। किसी किताब का सबसे बड़ा दुःख शायद यह नहीं कि वह पुरानी हो गई, बल्कि यह है कि वह पढ़े जाने की प्रतीक्षा में बंद पड़ी रहे। पुस्तकालय की शेल्फ पर रखी किताब किसी पाठक के हाथ में जाने की संभावना होती है, लेकिन वर्षों से बंद डिब्बे में रखी किताब धीरे-धीरे एक वस्तु में बदल जाती है। वह साहित्य होने की अपनी सक्रिय भूमिका खो देती है।

यही चिंता मुझे इस सवाल तक ले आई कि साहित्य का अगला संकट आखिर है क्या? हम वर्षों से कहते आ रहे हैं कि किताबें कम पढ़ी जा रही हैं, बच्चे किताबों से दूर हो रहे हैं, युवाओं का ध्यान मोबाइल और सामाजिक माध्यमों ने खींच लिया है, पुस्तकालय खाली हो रहे हैं और पढ़ने की आदत कमजोर पड़ रही है। अब कृत्रिम बुद्धिमत्ता के आने के बाद साहित्य के सामने एक और बड़ा प्रश्न खड़ा हो गया है। मशीन कविता लिख सकती है, कहानी लिख सकती है, अनुवाद कर सकती है, संपादन कर सकती है और कुछ ही क्षणों में ऐसा पाठ तैयार कर सकती है जिसे पढ़कर यह तय करना कठिन हो सकता है कि वह मनुष्य ने लिखा है या मशीन ने। लेकिन आज की इन खबरों को पढ़ने के बाद मुझे लगा कि शायद इन सारी चिंताओं के नीचे एक और ज्यादा बुनियादी संकट छिपा हुआ है। वह संकट किताब का नहीं, पाठक का है।

हम साहित्य के भविष्य पर बात करते हैं, लेकिन पाठक के भविष्य पर कितनी बात करते हैं? हम लेखक की चिंता करते हैं, प्रकाशक की चिंता करते हैं, किताब की बिक्री की चिंता करते हैं, साहित्यिक पुरस्कारों की चिंता करते हैं, साहित्यिक आयोजनों की चिंता करते हैं, लेकिन उस व्यक्ति की चिंता कितनी करते हैं जो आखिरकार किताब खोलेगा और पढ़ेगा लेकिन तभी जब उसके पास पुस्तकालय होंगे। किताब अपने आप में साहित्य नहीं है। किताब साहित्य की संभावना है। वह संभावना तब पूरी होती है जब कोई उसे पढ़ता है, उसके शब्दों से गुजरता है, उसके अर्थों से टकराता है, किसी पात्र में स्वयं को पहचानता है, किसी विचार से असहमत होता है या किसी वाक्य को पढ़कर कई मिनट तक चुप बैठा रहता है। पाठक के बिना किताब एक बंद कमरा है। पाठक उसके भीतर प्रवेश करता है तो वह कमरा संसार बन जाता है।

आज हमारे सामने यही विरोधाभास है कि किताबों की कमी नहीं है, बल्कि किताबों की भरमार है। हर वर्ष हजारों नई किताबें प्रकाशित होती हैं। डिजिटल माध्यम ने किताबों को और आसानी से उपलब्ध करा दिया है। अब एक क्लिक पर दुनिया के किसी भी हिस्से की किताब हमारे मोबाइल या कंप्यूटर पर आ सकती है। ई-बुक, ऑडियोबुक और डिजिटल पुस्तकालयों ने पुस्तक तक पहुंच को पहले की तुलना में बहुत आसान बनाया है। लेकिन पहुंच आसान होने का अर्थ यह नहीं कि पढ़ना आसान हो गया है। किताब

आपके पास पहुंच सकती है, लेकिन उसके लिए जो समय, धैर्य और एकाग्रता चाहिए, वह आपके पास बचा है या नहीं, यह कहीं बड़ा सवाल है।

हम एक ऐसे समय में प्रवेश कर चुके हैं जहां मनुष्य के पास सूचना बहुत है लेकिन ध्यान कम है। उसके पास पढ़ने के लिए सामग्री बहुत है लेकिन पढ़ने का समय कम है। उसके पास हजारों किताबें एक छोटे-से उपकरण में मौजूद हैं लेकिन वह कई बार कुछ मिनट से अधिक एक ही पाठ पर टिक नहीं पाता। सामाजिक माध्यमों की लगातार आती सूचनाएं, छोटे वीडियो, त्वरित प्रतिक्रियाएं और लगातार बदलती स्क्रीन के शोर ने हमारी मानसिक आदतों को बदल दिया है। पढ़ना एक ऐसी क्रिया है जिसमें मनुष्य को कुछ देर के लिए दुनिया से अलग होना पड़ता है। किताब पाठक से समय मांगती है। हमारे समय की समस्या शायद यही है कि हमारे पास बैठने और किसी चीज के साथ बने रहने का धैर्य कम होता जा रहा है।

हम एक ऐसे समय में प्रवेश कर चुके हैं जहां मनुष्य के पास सूचना बहुत है लेकिन ध्यान कम है। उसके पास पढ़ने के लिए सामग्री बहुत है लेकिन पढ़ने का समय कम है। उसके पास हजारों किताबें एक छोटे से उपकरण में मौजूद हैं लेकिन वह कई बार कुछ मिनट से अधिक एक ही पाठ पर टिक नहीं पाता। सामाजिक माध्यमों की लगातार आती सूचनाएं, छोटे वीडियो, त्वरित प्रतिक्रियाएं और लगातार बदलती स्क्रीन के शोर ने हमारी मानसिक आदतों को बदल दिया है। पढ़ना एक ऐसी क्रिया है जिसमें मनुष्य को कुछ देर के लिए दुनिया से अलग होना पड़ता है। किताब पाठक से समय मांगती है। हमारे समय की समस्या शायद यही है कि हमारे पास बैठने और किसी चीज के साथ बने रहने का धैर्य कम होता जा रहा है।
यहीं से साहित्य और पाठक के बीच का संकट शुरू होता है। किताब पढ़ना केवल अक्षरों को पहचानना नहीं है। साहित्य पढ़ना अपने भीतर एक जगह बनाना है। जब हम कोई उपन्यास पढ़ते हैं तो हम कई दिनों तक उसके पात्रों के साथ रहते हैं। मुझे याद है कि कैसे अपने बचपन में रूसी साहित्य को पढ़ने पश्चात् मैं कभी 'पावेल' बन जाता, कभी 'अन्ना' के जीवन का हिस्सा।

यहीं से साहित्य और पाठक के बीच का संकट शुरू होता है। किताब पढ़ना केवल अक्षरों को पहचानना नहीं है। साहित्य पढ़ना अपने भीतर एक जगह बनाना है। जब हम कोई उपन्यास पढ़ते हैं तो हम कई दिनों तक उसके पात्रों के साथ रहते हैं। मुझे याद है कि कैसे अपने बचपन में रूसी साहित्य को पढ़ने पश्चात् मैं कभी 'पावेल' बन जाता, कभी 'अन्ना' के जीवन का हिस्सा। बिमल मित्र का उपन्यास, जो शायद दो खंड़ों में था 'खरीदी कौड़ियों के मोल' को पढ़कर मैं गहरे अवसाद में चला गया था। अब ठीक से याद नहीं लेकिन उसमें दो बहनों की कथा थी, दुखांत, जिसे पढ़ मैं बेहद उदास हो गया था। कविता पढ़ते हुए एक पंक्ति हमारे भीतर उतरती है और कभी-कभी वर्षों बाद किसी परिस्थिति में उसका अर्थ अचानक खुलता है। कहानी हमें केवल घटना नहीं बताती, वह हमें किसी दूसरे मनुष्य के जीवन में प्रवेश कराती है। लेकिन इसके लिए पाठक को समय देना पड़ता है। आज की तेजी में यही सबसे दुर्लभ वस्तु बनती जा रही है।

इसलिए जब किसी पुस्तकालय की लाखों किताबें डिब्बों में बंद दिखाई देती हैं तो चिंता केवल उस पुस्तकालय की नहीं होनी चाहिए। हमें यह भी पूछना चाहिए कि अगर वे किताबें खुल भी जाएं तो क्या हमारे शहरों में उनके लिए पर्याप्त पाठक हैं? क्या हमारे विद्यालय बच्चों को किताब के साथ अकेले बैठना सिखा रहे हैं? क्या हमारे विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम से बाहर पढ़ने की आदत बची है? क्या हमारे घरों में किताबों के लिए वही सम्मान बचा है जो कभी एक पीढ़ी पहले दिखाई देता था? क्या माता-पिता बच्चों को यह कहते हैं कि किताब पढ़ो, या वे भी चाहते हैं कि बच्चा किसी परीक्षा में अधिक अंक लाए और उसके लिए किताब केवल पाठ्यक्रम तक सीमित हो जाए?

यहां हमें एक और विडंबना दिखाई देती है। हमारी शिक्षा व्यवस्था में पढ़ने का अर्थ धीरे-धीरे परीक्षा की तैयारी में बदल गया है। पुस्तकालयों में ऐसे युवा बड़ी संख्या में दिखाई देते हैं जो प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे हैं। यह अच्छी बात है कि पुस्तकालय अभी भी युवाओं को आकर्षित कर रहे हैं, लेकिन दुःख यह है कि पुस्तकालय का अर्थ केवल परीक्षा की तैयारी का स्थान नहीं रह जाना चाहिए। पुस्तकालय वह जगह भी होना चाहिए जहां कोई युवा बिना किसी परीक्षा के दबाव के कोई कविता पढ़ सके, कोई उपन्यास उठा सके, दर्शन की किताब पलट सके, किसी अनजान लेखक से परिचित हो सके और यह भी संभव है

कि किसी ऐसी किताब को पढ़ ले जो उसके जीवन की दिशा बदल दे। पढ़ने का सबसे सुंदर अनुभव वही है जिसमें आपको पहले से पता नहीं होता कि किताब आपको कहां ले जाएगी।

कभी पुस्तकालय में जाकर किताबों की अलमारियों के बीच घूमना अपने आप में एक अनुभव था। कोई किताब सामने आ गई, उसका शीर्षक अच्छा लगा, आपने उसे उठा लिया, कुछ पन्ने पढ़े और फिर उसे घर ले आए। इस आकस्मिक खोज में भी साहित्य का आनंद था। डिजिटल दुनिया ने किताब खोजने और खरीदने को आसान बना दिया है, लेकिन किताबों के बीच भटकने की वह संभावना कम हो गई है। एल्गोरिद्म आपको वही दिखाता है जिसे वह मानता है कि आप पसंद करेंगे। पुस्तकालय आपको वह किताब भी दे सकता है जिसके बारे में आपको पता ही नहीं था कि आपको उसकी जरूरत है। शायद यही पुस्तकालय की सबसे बड़ी खूबसूरती है—वह हमारी पसंद का सम्मान करते हुए भी हमारी पसंद को चुनौती देता है।

लेकिन इस बदलती दुनिया में हमें डिजिटल माध्यम को केवल खलनायक बनाकर भी नहीं देखना चाहिए। इंटरनेट ने साहित्य को उन पाठकों तक पहुंचाया है जिनके लिए कभी किताबें उपलब्ध नहीं थीं। डिजिटल पुस्तकें, ऑडियोबुक और ऑनलाइन अभिलेखागार ने साहित्य के संसार का विस्तार किया है। दृष्टिबाधित पाठकों के लिए कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित तकनीकें किताबों और अध्ययन सामग्री को सुनने योग्य बना रही हैं। अनेक भारतीय भाषाओं की सामग्री डिजिटल माध्यम से नए पाठकों तक पहुंच सकती है। इसलिए समस्या तकनीक नहीं है। समस्या तब पैदा होती है जब तकनीक हमारी पढ़ने की क्षमता को बढ़ाने के बजाय हमारा ध्यान लगातार छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट देती है। और अब इस पूरी बहस में कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रवेश कर चुकी है। कुछ समय पहले तक साहित्य के सामने सवाल था कि क्या लोग किताब पढ़ेंगे। अब सवाल यह भी है कि किताब लिखेगा कौन? मशीन के आने से यह सवाल बहुत तेजी से सामने आया है। अगर एक मशीन कुछ मिनटों में हजारों शब्द तैयार कर सकती है तो क्या लेखक का समय, श्रम और रचनात्मकता उसी अर्थ में मूल्यवान रहेंगे? अगर बाजार में बड़ी संख्या में मशीन से तैयार उपन्यास, कहानियां और कविताएं आने लगें तो पाठक उनमें से वास्तविक साहित्य को कैसे पहचानेगा?

सितंबर में ही 'द इंडियन एक्सप्रेस' ने एआई और पुस्तक के भविष्य पर इसी तरह की एक महत्वपूर्ण बहस उठाई थी। सवाल था कि जब मशीन के लिए किताब तैयार करना लगभग सहज हो जाएगा तो आखिर किताब की कीमत क्या रह जाएगी। यदि बाजार में ऐसी रचनाओं की संख्या बहुत बढ़ जाए जिनमें मानवीय रचनात्मक प्रक्रिया सीमित हो, तो प्रकाशक और पाठक दोनों के सामने चयन और भरोसे का सवाल खड़ा होगा। यानी एआई का संकट केवल लेखक के सामने नहीं है; वह पाठक के सामने भी है। पाठक को भविष्य में शायद यह जानना पड़ेगा कि वह जो पढ़ रहा है, उसे किसने लिखा है, कैसे लिखा है और उसमें मनुष्य की रचनात्मक भागीदारी कितनी है। मुझे लगता है कि पाठक की भूमिका इसके चलते पहले से ज्यादा महत्वपूर्ण होने वाली है। यदि आने वाले समय में सामग्री की बाढ़ आती है तो पाठक केवल उपभोक्ता नहीं रह सकता। उसे साहित्यिक विवेक विकसित करना होगा। उसे भाषा की चमक और साहित्य की गहराई के बीच फर्क करना होगा। उसे यह समझना होगा कि अच्छी तरह लिखा हुआ पाठ और महत्वपूर्ण साहित्य एक ही चीज नहीं हैं। मशीन बहुत सुंदर वाक्य बना सकती है, लेकिन सुंदर वाक्य अपने आप में साहित्य नहीं बनाते। साहित्य तब बनता है जब भाषा के पीछे कोई दृष्टि, अनुभव, संवेदना और मनुष्य की दुनिया को समझने की कोशिश होती है।

यही कारण है कि एआई पर साहित्यिक बहसें भी अब तेज हो रही हैं। जून 2026 में साहित्य अकादेमी और इंडिया इंटरनेशनल सेंटर ने 'लेखकविहीन क्षितिज : एआई, लेखकीयता और उभरता रचनात्मक परिवेश' विषय पर राष्ट्रीय संगोष्ठी आयोजित की। अगस्त में अशोका विश्वविद्यालय के 'भाषावाद 3.0' में अनुवाद, लेखन और प्रकाशन पर एआई के प्रभाव को लेकर गंभीर चर्चा हुई। सवाल यह नहीं था कि तकनीक को रोका जा सकता है या नहीं। सवाल यह था कि उसके इस्तेमाल की सीमा क्या होगी और साहित्य में मनुष्य की भूमिका किस तरह बची रहेगी। यह अपने आप में संकेत है कि साहित्य अब एआई को दूर खड़ी तकनीकी घटना के रूप में नहीं देख रहा, बल्कि अपने भीतर प्रवेश कर चुकी वास्तविकता के रूप में देख रहा है।

यहां साहित्य की अपनी प्रकृति को बचाने का प्रश्न आता है। साहित्य हमेशा त्वरित नहीं होता। कई महान किताबें पहली बार पढ़ते हुए कठिन लगती हैं। कई कविताएं पहली बार समझ में नहीं आतीं। कुछ उपन्यास धीरे-धीरे खुलते हैं। कुछ लेखक अपने समय में लोकप्रिय नहीं होते और बाद में उनकी रचनाओं का महत्व समझ में आता है। अगर हम साहित्य को केवल उस सामग्री में बदल देंगे जो पहले पांच मिनट में पाठक को बांध ले, तो हम साहित्य के उस हिस्से को खो देंगे जो पाठक से धैर्य मांगता है और बदले में उसे एक गहरा अनुभव देता है। इसलिए पाठक को बचाना केवल अधिक किताबें प्रकाशित करने का काम नहीं है। यह एक सांस्कृतिक जिम्मेदारी है। घर में बच्चों के सामने किताब होनी चाहिए। विद्यालय में पुस्तकालय केवल परीक्षा की किताबों का भंडार नहीं होना चाहिए। विश्वविद्यालय में पाठ्यक्रम के बाहर पढ़ने के लिए समय और वातावरण होना चाहिए। शहरों में सार्वजनिक पुस्तकालयों को केवल सरकारी इमारत नहीं